हिन्दी विभाग
स्नातक तृतीय ७(III)
पत्र संख्या :- 08

* हिन्दी नाटक की आधुनिकता पर विचार कीजिए। *

भारत वर्ष में नाटकों का प्रचार बहुत प्राचीन काल से है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र बहुत पुराना है। रामायण, महाभारत, हरिवंश इत्यादि में नट और नाटक का उल्लेख है। पाणिनि ने 'शिलाली' और 'कृशाश्व' नामक दो नटसूत्रकारों के नाम लिए हैं। शिलाली का नाम शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण और सामवेदीय अनुपद सूत्र में मिलता है।

हरिवंश में लिखा है कि जब प्रद्युम्न, सांब आदि यादव राजकुमार व्रजनाभ के पुर में गये थे तब वहाँ उन्होंने रामजन्म और रंभाभिसार नाटक खेले थे।

आधुनिक काल में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ रंगमंच को प्रोत्साहन मिला। फलतः समूचे भारत में व्यावसायिक नाटक मंडलियाँ स्थापित हुईं। नाट्यारंगन की प्रवृत्ति सर्वप्रथम बंगला में दिखाई दी। सन् 1835 के आसपास कलकत्ता में कई अव्यावसायिक रंगशालाओं का

निर्माण हुआ। कलकत्ता के कुछ सम्भ्रान्त परिवारों और रईसों ने इनके निर्माण में योग दिया था और दूसरी ओर व्यावसायिक नाटक मंडलियों के साहित्यिक प्रयास से अलग था।

बंगला के इस नाट्य-सृजन और नाट्यांगन का अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के रंगान्दोलन को इसी से दिशा, दिशा और प्रेरणा मिली थी। बंगला के इस प्रारंभिक साहित्यिक प्रयास में जो नाटक रचे गए वे मूल संस्कृत या अंग्रेजी नाटकों के छायानुवाद या रूपान्तर थे। स्पष्ट है कि भारतेन्दु का प्रारंभिक प्रयास भी संस्कृत नाटकों के छायानुवाद का ही था।

हिन्दी रंगमंचीय साहित्यिक नाटकों में सबसे पहला हिन्दी गीतिनाट्य अमानत कृत 'इंदर सभा' कहा जा सकता है जो सन् 1853 ई० में लखनऊ के नवाब वाजिद अलीशाह के दरबार में खेला गया था।

इसमें उर्दू-शैली का वैसा ही प्रयोग था जैसा पारसी नाटक मंडलियों ने अपने नाटकों में अपनाया। सन् 1862 ई० में काशी में 'जानकी मंगल' नामक विशुद्ध हिन्दी नाटक खेला गया था।

इन सभी ने धार्मिक-पौराणिक तथा प्रेम-प्रधान नाटकों को ही मंच पर दिखाती थी। इसी से जनता की रुचि भ्रष्ट करने का दोष इन पर लगाया जाता है भ्रमण के कारण इन कम्पनियों का रंगमंच भी इनके साथ घूमता रहता था।

राधेश्याम कथावाचक, नारायण प्रसाद बेताब, आगाहश्र कश्मीरी, हरिकृष्ण जौहर आदि कुछ ऐसे नाटककार भी हुए हैं जिन्होंने पारसी रंगमंच को कुछ साहित्यिक पुट देकर सुधारने का प्रयत्न किया है और हिन्दी को इस व्यावसायिक रंगमंच पर लाने की चेष्टा की। पर व्यावसायिक वृत्ति के कारण संभवतः इस रंगमंच

पर सुधार संभव नहीं था। इसी से इन नाटककारों को भी व्यावसायिक बन जाना पड़ा। इस प्रकार पारसी रंगमंच न विकसित हो सका न स्थायी ही बन सका।

प्रस्तुतकर्ता
बेनाम कुमार (अतिथि शिक्षक)
हिन्दी विभाग
राज नारायण महाविद्यालय हाजीपुर
(BRABU MUZAFFARPUR)
मो० नं० — 8292271041
ईमेल — benamkumar13@gmail.com

दिनांक
23/10/2020